जाति आधारित जनगणना: कुछ अनछुए पहलू

शेख मोईन नईम

जातिगत जनगणना कराने का मतलब है आरक्षण के मुद्दे को फिर उछालना। इसके होते ही एक तूफान खड़ा हो सकता है। अगर इससे आरक्षण का मुद्दा गरमाया तो 'अपर कास्ट' इसके खिलाफ खड़ा हो सकता है, क्योंकि अगर जातिगत जनगणना से आरक्षण बढ़ा तो इसका सब से ज्यादा नुकसान 'अपर कास्ट' को होगा।

बिहार में जातिगत जनगणना का मुद्दा फिर गरमाने लगा है। बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार इसके पक्ष में हैं। साथ ही राज्य में उनकी विपक्षी पार्टी राजद भी इस मामले में उन के साथ है। जातिगत जनगणना कराने का मतलब है आरक्षण के मुद्दे को फिर उछालना। इसके होते ही एक तूफान खड़ा हो सकता है। अगर इससे आरक्षण का मुद्दा गरमाया तो 'अपर कास्ट' इसके खिलाफ खड़ा हो सकता है, क्योंकि अगर जातिगत जनगणना से आरक्षण बढ़ा तो इसका सब से ज्यादा नुकसान 'अपर कास्ट' को होगा। मतलब यह है कि यह पूरा मामला नए सिरे से अगड़ों-पिछड़ों में फिर ध्रुवीकरण करा सकता है, जिसका असर वोट बैंक पर भी होगा। मोटे तौर पर देश के कई राज्यों में इस तरह की आवाज उठ रही है, लेकिन सबसे ज्यादा मुखर तरीके से बिहार में इसके पक्ष में माहौल भी बन रहा है और इसका सियासी लाभ लेने की भी कोशिश दिख रही है। राम मंदिर आंदोलन में कमंडल की धार को कुंद करने के लिए तत्कालीन प्रधानमंत्री वीपी सिंह ने पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षण को लागू किया था। उस मंडल आयोग के अध्यक्ष बिहार के ही थे। उसी तर्ज पर सामाजिक-आर्थिक जनगणना की शुरुआत करके नीतीश कुमार देश की राजनीति में नए सिरे से अपना नाम दर्ज कराने की कोशिश कर रहे हैं।

दरअसल देश में हर दस साल में होने वाली जनगणना के दौरान धार्मिक, शैक्षणिक, आर्थिक, आयु, लिंग, आदि का जिक्र होता है। साथ ही अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों का भी आंकड़ा लिया जाता है, लेकिन जाति आधारित आंकड़ा नहीं लिया जाता। कुछ सियासी दल मांग कर रहे हैं कि जनगणना जाति आधारित हो, ताकि यह पता चल सके कि कितनी जातियां हैं और जनसंख्या में उनकी हिस्सेदारी कितनी है? इस सब में सियासत की नजर सब से ज्यादा ओबीसी यानी अन्य पिछड़ा वर्ग की जातियों और उनकी जनसंख्या पर है। इस तरह की जनगणना में सियासत अपना फायदा और नुकसान देख रही है। भाजपा से लेकर कांग्रेस और क्षेत्रीय दल अपनी सहूलियत के हिसाब से इसके नफा नुकसान गिनवा रहे हैं। जातिगत जनगणना के पक्ष और विपक्ष को लेकर जानकारों की भी अपनी राय है। हाल के समय में यह विषय सर्वाधिक विवाद में रहा है। जाति और आरक्षण संबंधी पुरानी बहसों की तरह ही इसमें भी स्पष्ट खांचें बने हुए हैं। हमारी कोशिश यही है कि आप इस विषय के सभी पक्षों से अवगत हों और फिर अपने विवेक से किसी निष्कर्ष तक पहुंचें। वस्तुत:, बोल-चाल में जिसे हम जाति जनगणना कहते हैं, उसे तकनीकी शब्दावली में 'सामाजिक एवं शैक्षणिक पिछड़ा वर्ग' (ओबीसी) गणना कहा जाता है, क्योंकि ओबीसी का आधिकारिक संवर्ग यही है। यहां यह भी ध्यान रखना है कि इसके अंतर्गत सभी जातियों की गणना की बात नहीं है, बल्कि केवल ओबीसी के अंतर्गत आने वाली जातियों को ही गिना जाएगा। आजादी के समय से ही दशकीय जनगणना में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के अंतर्गत आने वाली जातियों को गिना जाता रहा है तथा शेष को सामान्य श्रेणी में मान कर उन की जाति दर्ज नहीं की जाती। अब यह मांग हो रही है कि दशकीय जनगणना में ओबीसी जातियों की गणना भी की जाए। इसके पूर्व 2011 में मुख्य जनगणना से अलग 'सामाजिक आर्थिक जाति जनगणना' (एसईसीसी) के अंतर्गत जातिगत जनगणना की गई थी, किंतु इसके आंकड़े अभी तक जारी नहीं किए गए।

1872 में ब्रिटिश वायसराय लॉर्ड मेयो के अधीन देश में पहली बार जनगणना कराई गई। उसके बाद यह हर 10 वर्ष बाद कराई गई। हालांकि, भारत की पहली संपूर्ण जनगणना 1881 में हुई। 1949 के बाद से यह भारत सरकार के गृह मंत्रालय के अधीन भारत के महारजिस्ट्रार एवं जनगणना आयुक्त द्वारा कराई जाती है। 1951 के बाद की सभी जनगणनाएं 1948 के जनगणना अधिनियम के तहत कराई गई। 2011 तक भारत की जनगणना 15 बार की जा चुकी है।

वर्ष 1951 से 2011 तक भारत में हर 10 साल पर जनगणना का काम होता रहा है, लेकिन हर जनगणना में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की गणना के डेटा अलग से दिए जाते हैं, लेकिन दूसरी जातियों के नहीं। अलबत्ता 1931 तक भारत में जो जनगणना हुई वो जातिगणना आधारित जरूर थी। 1941 में जातिगत आधार पर डेटा इकट्ठा किया गया, लेकिन उसे प्रकाशित नहीं किया गया। हालांकि, इससे यह अंदाज लगाना थोड़ा मुश्किल हो गया कि देश में ओबीसी यानी अन्य पिछड़ी जातियों की जनसंख्या कितनी है? ओबीसी में कितने वर्ग हैं और अन्य में कितने? मंडल आयोग ने अनुमान लगाया था कि देश में ओबीसी की आबादी करीब 52 फीसदी है। कुछ अन्य लोग इस का अंदाज नेशनल सैंपल सर्वे के आधार पर लगाते हैं, जबकि राजनीतिक पार्टियों के पास लोकसभा और राज्यों के विधानसभा चुनावों में इसका अलग अनुमान रहता आया है।

कितनी बार जाति आधारित जनगणना की मांग की गई है?

हर जनगणना से पहले इस तरह मांग की ही जाती रही है। संसद के रिकॉर्ड बताते हैं कि इसे लेकर संसद में बहस होती है और सवाल उठते रहे हैं। खास कर यह मांग उन लोगों की ओर से उठाई जाती रही है जो अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) या शोषित समुदाय से ताल्लुक रखते हैं, वहीं दूसरी तरफ सवर्ण जातियों से आने वाले लोग इसका विरोध करते हैं। इस बार भी बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार, जीतन मांझी और केंद्रीय समाज कल्याण मंत्री रामदास आठवले चाहते हैं कि जनगणना में जातियों की भी अलग से गणना हो।

भाजपा की राष्ट्रीय सचिव पंकजा मुंडे भी इसकी मांग ट्विटर पर पिछले दिनों कर चुकी हैं। जनवरी में महाराष्ट्र विधानसभा में इस तरह का एक प्रस्ताव भी पास किया गया था कि केंद्र 2021 की

जनगणना में जातियों का डेटा भी एकत्रित करे। एक अप्रैल को नेशनल कमीशन फॉर बैकवर्ड क्लास ने भी सरकार से मांग की 2021 की जनगणना में ओबीसी की आबादी का डेटा भी इकट्ठा किया जाए। इस तरह की एक याचिका हैदराबाद के जी.मलेश यादव ने सुप्रीम कोर्ट में दायर की, जो फिलहाल लंबित है।

जनगणना का विषय

भारत में अंग्रेजों ने सन 1881 से नियमित जनगणना की शुरुआत कराई थी। केंद्रीय गृहमंत्री पटेल के समय जनगणना के लिए 1948 में कानून बनाए गए, जिसके तहत रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इंडिया की नियुक्ति होती है। संविधान की 7वीं अनुसूची के अनुसार जनगणना का विषय केंद्र सरकार के अधीन है।

सन 1951 में स्वतंत्र भारत की पहली जनगणना हुई। भारत में जनगणना का 16वां राऊंड 2020 में होना था, जिसे कोरोना के कारण टालना पड़ा। जनगणना के लिए बने 1990 के नियमों में मोदी सरकार ने संशोधन करके डिजिटल जनगणना का मार्ग प्रशस्त किया है। संविधान के अनुसार, एससी, एसटी वर्ग के लिए विधानसभा और लोकसभा की सीटों में आरक्षण के लिए सीटों का नियमित परिसीमन होता है। इसलिए भारत में हर 10 साल में होने वाली जनगणना में एससी और एसटी वर्ग का विवरण शामिल होता है, लेकिन ओबीसी के बारे में ऐसा प्रावधान नहीं है। राज्यों का कहना है कि जनगणना का संवैधानिक अधिकार भले ही केंद्र सरकार के पास हो, लेकिन सरकारी योजनाओं के सफल क्रियान्वयन के लिए उन्हें ऐसा सर्वे करने और डेटा एकत्रित करने का पूरा अधिकार है। वर्ष 2015 में कर्नाटक के तत्कालीन मुख्यमंत्री सिद्धारमैया ने जाति आधारित जनगणना का फैसला लिया था। इसे असंवैधानिक बताया गया, तो इसका नाम बदल कर सामाजिक एवं आर्थिक सर्वे किया गया। प्रदेश सरकार ने अपने खजाने से करीब 150 करोड़ रुपए खर्च कर यह सर्वे करवाया था। 2017 में कमेटी ने रिपोर्ट सरकार को सौंपी, लेकिन खेल उल्टा पड़ गया। पूरा सर्वे विवादों में आ गया, क्योंकि खुद की जाति को ओबीसी या एससी और एसटी में शामिल कराने को लेकर लोगों ने उपजाति का नाम जाति के कॉलम में भर दिया। नतीजतन करीब 200 नई जातियां सामने आ गईं। करीब आधी जातियां तो ऐसी थी जिनकी तादाद दहाई यानी 10 से भी कम थी। ओबीसी की जनसंख्या में वृद्धि हो गई, तो लिंगायत जैसे प्रमुख समुदाय की जनसंख्या कम हो गई। जिसके बाद सिद्दारमैया सरकार ने यह रिपोर्ट सार्वजनिक नहीं की। राजद के तेजस्वी यादव का कहना है कि अगर केंद्र सरकार जातिगत जनगणना नहीं करवाती है, तो बिहार सरकार कर्नाटक मॉडल की तर्ज पर अपने खर्च से यह जनगणना करवा सकती है। इस पर राजद भी जेडीयू के साथ है।

इसका जवाब जानने से पहले यह जान लेना जरूरी है कि वर्ष 1931 तक भारत में जातिगत जनगणना होती थी। वर्ष 1941 में जनगणना के समय जाति आधारित डेटा जुटाया जरूर गया था, लेकिन प्रकाशित नहीं किया गया। वर्ष 1951 से 2011 तक की जनगणना में हर बार अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति का डेटा दिया गया, लेकिन ओबीसी और दूसरी जातियों का नहीं। इसी बीच साल 1990 में केंद्र की तत्कालीन विश्वनाथ प्रताप सिंह सरकार ने दूसरा पिछड़ा वर्ग आयोग (जिसे आमतौर पर मंडल आयोग के रूप में जाना जाता है) की एक सिफारिश को लागू किया था। यह सिफारिश अन्य पिछड़ा वर्ग के उम्मीदवारों को सरकारी नौकरियों में सभी स्तर पर 27 प्रतिशत आरक्षण देने की थी। इस फैसले ने भारत खासकर उत्तर भारत की राजनीति को बदल कर रख दिया। भारत में ओबीसी आबादी कितने प्रतिशत है? इसका कोई ठोस प्रमाण फिलहाल नहीं है। मंडल कमीशन के आंकड़ों के आधार पर कहा जाता है कि भारत में ओबीसी आबादी 52 प्रतिशत है। हालांकि मंडल कमीशन ने साल 1931 की जनगणना को ही आधार माना था। इसके अलावा अलग-अलग राजनीतिक पार्टियां अपने चुनावी सर्वे और अनुमान के आधार पर इस आंकड़े को कभी थोड़ा कम, कभी थोड़ा ज्यादा करके आंकती आई है, लेकिन केंद्र सरकार जाति के आधार पर कई नीतियां तैयार करती है। ताजा उदाहरण नीट परीक्षा का ही है, जिसके ऑल इंडिया कोटे में ओबीसी के लिए आरक्षण लागू करने की बात मोदी सरकार ने कही है।

जनगणना में आदिवासी और दलितों के बारे में पूछा जाता है, बस गैर दलित और गैर आदिवासियों की जाति नहीं पूछी जाती। इस वजह से आर्थिक और सामाजिक पिछड़ेपन के हिसाब से जिन लोगों के लिए सरकार नीतियां बनाती है, उससे पहले सरकार को यह पता होना चाहिए कि आखिर उनकी जनसंख्या कितनी है? जातिगत जनगणना के अभाव में यह पता लगाना मुश्किल है कि सरकार की नीति और योजनाओं का लाभ सही जाति तक ठीक से पहुंच भी रहा है या नहीं?

अनुसूचित जाति, भारत की जनसंख्या में 15 प्रतिशत है और अनुसूचित जनजाति 7.5 फीसदी हैं। इसी आधार पर उनको सरकारी नौकरियों, स्कूल, कॉलेज में आरक्षण इसी अनुपात में मिलता है। लेकिन जनसंख्या में ओबीसी की हिस्सेदारी कितनी है? इसका कोई ठोस आकलन नहीं है। सुप्रीम कोर्ट के फैसले के मुताबिक, कुल मिलाकर 50 फीसदी से ज्यादा आरक्षण नहीं दिया जा सकता, इस वजह से 50 फीसदी में से अनुसूचित जाति और जनजाति के आरक्षण को निकाल कर बाकी का आरक्षण ओबीसी के खाते में डाल दिया, लेकिन इसके अलावा ओबीसी आरक्षण का कोई आधार नहीं है। यही वजह है कि कुछ विपक्षी पार्टियां जातिगत जनगणना के पक्ष में खुल कर बोल रही हैं।

वक्त की मांग है जाति जनगणना

हाल के दिनों में कई राजनीतिक दलों और सामाजिक चिंतकों ने भारत में जाति जनगणना कराने की मांग की है। अब प्रश्न उठता है कि ओबीसी समाज द्वारा यह मांग क्यों की जा रही है? इसके जोर पकड़ने का सबसे प्रभावी कारक आरक्षण है। बीते समय के दो परिवर्तनों ने इस की गति और तेज कर दी है। पहला EWâ÷ आरक्षण और दूसरा राज्यों को ओबीसी वर्ग की पहचान करने का अधिकार दिया जाना। इन दोनों संशोधनों से दो संभावनाएं पैदा हुई। पहली यह कि आरक्षण की 50 प्रतिशत सीमा अमान्य हो सकती है और दूसरी यह कि राज्य अपने स्तर पर ओबीसी वर्ग की पहचान सुनिश्चित कर उसी अनुपात में उन्हें आरक्षण का लाभ दे सकें। इन्हीं दोनों संभावनाओं ने ओबीसी जाति जनगणना की मांग में तेजी ला दी है। इस मांग को और गति मद्रास उच्च न्यायालय के एक फैसले ने दे दी जिसमें जाति जनगणना को आवश्यक बताया गया है।

अब यह विचारणीय है कि ओबीसी वर्ग द्वारा की जा रही जाति जनगणना की मांग उचित है या नहीं?

मेरा मानना है कि तीन कारणों से यह सर्वथा उचित मांग है। पहला कारण यह कि यदि कोई सामाजिक वर्ग वंचना का शिकार है, तो उसे मुख्यधारा में ले आने के लिए सब से प्राथमिक कार्य है उसकी वास्तविक स्थिति का अध्ययन किया जाए; यह अध्ययन उनकी वास्तविक संख्या, सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक स्थिति से संबंधित होना चाहिए। यदि वास्तविक स्थिति

का पता ही नहीं होगा, तो उनके उत्थान के लिए नीति-निर्माण कैसे संभव हो पाएगा ? यह किसी से छिपा नहीं है कि ओबीसी वर्ग सामाजिक अन्याय का लंबे समय से शिकार रहा है। साथ ही हमें यह भी ज्ञात है कि यदि किसी वर्ग की सामाजिक वंचना को समाप्त करने संबंधी उपायों को अपनाने में बहुत देरी की जाए, तो उस वर्ग में असंतोष मुखर होने लगता है जो कि कभी-कभी हिंसा का मार्ग अपनाने तक चला जाता है। प्रगति की राह पर आगे बढ़ रहे देश में ऐसा न होने पाए, उस के लिए समय-पूर्व सतर्कता आवश्यक है।

ओबीसी वर्ग की जाति जनगणना की मांग के पक्ष में दूसरा कारण सामाजिक न्याय व समावेशी विकास से संबंधित है। कोई भी देश सही अर्थों में तभी विकसित व सफल राष्ट्र की श्रेणी में आता है जब वह समाज के सभी वर्गों का कल्याण सुनिश्चित करता है। ओबीसी वर्ग यदि वंचना का शिकार है और यह कहता है कि उसे उसकी आबादी के अनुपात में संसाधन उपलब्ध नहीं कराए जा रहे हैं, तो यह माना जाना चाहिए कि देश के संसाधनों के वितरण में व्यापक असमानता व्याप्त है। संसाधनों के न्यायपूर्ण वितरण से इस तरह की असमानता को समाप्त कर सामाजिक न्याय व समावेशी विकास संबंधी पहल का किया जाना देश के उत्तरोत्तर विकास के लिए अति आवश्यक है, जिसकी शुरुआत वंचितों की गणना करने से होनी चाहिए।

ओबीसी जनगणना की आवश्यकता का तीसरा कारण इस वर्ग की विभिन्न जातियों के मध्य व्याप्त विसंगतियों का समाधान करने से संबंधित है। दरअसल इंद्रा साहनी मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्देश दिया था कि ओबीसी वर्ग की सामाजिक, शैक्षिक व आर्थिक स्थिति का समय-समय पर अध्ययन कराया जाना चाहिए ताकि इस वर्ग की ऐसी जातियों को जो सामाजिक, शैक्षिक व आर्थिक आधार पर वंचना से मुक्त हो गई हों, उन्हें ओबीसी वर्ग से निकाल कर सामान्य वर्ग में शामिल किया जा सके। इससे इस वर्ग में शामिल वंचित जातियों के उत्थान के अवसर भी बढ़ेंगे और ओबीसी वर्ग की विभिन्न जातियों के मध्य व्याप्त विसंगतियों को भी दूर किया जा सकेगा।

इसके अतिरिक्त यह भी कि केवल इस संभावित भय के कारण इसे रोकना उचित नहीं है कि जाति जनगणना देश में जाति आधारित राजनीति को बढ़ावा देगी। भारत की राजनीति में जाति का प्रभाव हमेशा से रहा है और अभी आगे भी बने रहने की संभावना है। हमें यह समझना चाहिए कि यह समस्या लोकतंत्र की व्यवस्था में व्याप्त कमियों को दर्शाती है जिसका समाधान तलाशा जाना वैचारिकी के स्तर पर अभी बाकी है। ऐसे में लोकतंत्र की विसंगतियों का बहाना बना कर किसी वर्ग की वंचना की स्थिति को बरकरार रखना कहीं से भी उचित नहीं है। साथ ही जाति जनगणना के बाद आरक्षण की 50 प्रतिशत की अधिकतम सीमा का कोटा बढ़ाए जाने की मांग को समझना भी आवश्यक है। हमें सब से पहले तो यह समझना होगा कि 50 प्रतिशत की यह सीमा कोई अंतिम व आदर्श लकीर नहीं है। इस तथ्य पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि राज्यों की आबादी में जातीय भिन्नताएं व्याप्त हैं। अनुसूचित जाति व जनजाति के संदर्भ में जनगणना होने के कारण यह आसानी से तय कर दिया जाता है कि उक्त राज्य में उनके लिए कितना प्रतिशत आरक्षण होगा ? किंतु ओबीसी की गणना न होने से वे इस लाभ से वंचित रह जाते हैं। इस संबंध में मध्य प्रदेश का उदाहरण लेना ठीक रहेगा। वहां आदिवासियों की जनसंख्या अधिक होने के कारण उन्हें 20 प्रतिशत आरक्षण मिलता है, अनुसूचित जाति को 16 प्रतिशत और 50 प्रतिशत के अधिकतम कोटा के कारण ओबीसी को केवल 14 प्रतिशत आरक्षण मिलता है, जबकि उनकी राज्य की आबादी में संख्या इस से कहीं अधिक है। अत: समय आ गया है कि केंद्र के स्तर पर भले ही अधिकतम कोटे की सीमा का ध्यान रखा जाए, किंतु राज्यों के स्तर पर इस सीमा में आवश्यकतानुसार बदलाव जरूरी है। इस बदलाव के लिए यह आवश्यक है कि अब जाति जनगणना में और देरी न की जाए।

इस तरह की जनगणना की मांग सिर्फ इसलिए हो रही है ताकि जातियों की जानकारी और उन से जुड़ी आबादी का आंकड़ा साफ हो सके ताकि उसे सियासतदान अपने फायदे के लिए इस्तेमाल करें। लेकिन सियासी फायदे से अलग इस तरह की गणना से हाशिये और लगभग विलुप्त होने की कगार पर पहुंच चुकी जातियों या समुदायों का पता चलेगा। जिससे उनको बचाने और उत्थान की पहल की जा सकती है। साथ ही अन्य जातियों की स्थिति के आधार पर उनके विकास के लिए नीतियां बन सकती हैं।

जाति जनगणना से आगे की राह

इस तथ्य को स्वीकार करने में बहुत असहजता नहीं होनी चाहिए कि राज्य के पास सामाजिक श्रेणी से संबद्ध वे आंकड़े होने चाहिए जिनके आधार पर सामाजिक उत्थान के कार्यक्रम तथा-आरक्षण, चलाए जाते हैं। एक बेहतर सांख्यिकी ही बेहतर नीति-निर्माण का आधार होती है। दुनिया भर में देश इस तरह के अभ्यास को अपनाते हैं। उदाहरण के लिए अमेरिका नस्ल आधारित सामाजिक आंकड़े संग्रह करता है तथा ब्रिटेन अप्रवासियों की जानकारी जुटाता है, ताकि बेहतर सामाजिक नीति कायम की जा सके। भारत में भी ओबीसी जातियों की गिनती की मांग इसी दायरे में है। इस लिहाज से ओबीसी जातियों की गणना की मांग ठीक ही है। इस प्रयास के विरोध के तर्कों से भी अब आप अवगत ही हैं। तर्कों के द्वैत से आगे एक राह तीसरी भी है और वह यह कि इस प्रयास से आधुनिक राष्ट्र-राज्य का लोकतंत्रवादी ढांचा किस प्रकार प्रभावित होगा ?

वस्तुत: आज सर्वाधिक प्रगतिशील शासन व्यवस्था के रूप में स्वीकृत उदारवादी लोकतंत्र की बुनियाद इसी बात पर टिकी है वह शासन का आधार 'नागरिक' को बनाता है। एक निश्चित परिधि के अंदर निवास कर रहे लोगों को नागरिक के रूप में चिन्हित करने का अर्थ यही है कि राज्य धर्म, जाति, संप्रदाय, लिंग, क्षेत्र आदि के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा तथा शासन का आधार 'केवल नागरिक' को बनाएगा। यद्यपि समानता के आग्रह के कारण इसमें आंतरिक भेदभाव स्वीकार किया जाता है, किंतु जैसा कि आशीष नंदी कहते हैं, "आधुनिक राष्ट्र-राज्य आमतौर पर राजनीति में संस्कृति की मौजूदगी से चिंतित रहता है। वह एक ऐसा सार्वजनिक जीवन गढ़ना चाहता है जिस पर केवल शासनकला के मूल्य हावी रहें।" तो क्या जाति जनगणना इस कसौटी पर खरी उतरती है ? इस का जबाव है, 'नहीं' या थोड़ी नरमी बरतें तो 'शायद नहीं' !

इसकी वजह बहुत स्पष्ट है। आधुनिक लोकतंत्र जहां अपने नागरिकों से यह अपेक्षा रखता है कि वे सार्वजनिक भागीदारी में क्रमश: अपनी व्यक्तिगत पहचान (जाति, धर्म, क्षेत्र, आदि) से दूर होते जाएं और 'सार्वभौमिक नागरिक बोध' से जुड़ जाएं, वहीं जातिगत जनगणना नागरिकों को अपनी जाति के आधार पर समूहीकरण के लिए उकसाती है। यह न

केवल राजनीतिक भागीदारी के प्रश्न को नागरिक बोध से खींच कर अस्मिता बोध की ओर ले आती है, बल्कि इसी आधार पर जनकल्याण को परिभाषित करने की आकांक्षा भी रखती है। यह एक दिलचस्प विरोधाभास है। आधुनिक लोकतंत्रात्मक ढांचे के अंतर्गत ही आधुनिकता के विरोध का विरोधाभास।

एक अन्य पक्ष यह भी है कि आखिर इन आंकड़ों का उपयोग किस प्रकार किया जाएगा? अगर यह मान भी लिया जाए कि इससे आरक्षण व अन्य सामाजिक नीति का क्रियान्वयन बेहतर हो सकेगा, तो भी क्या इस संभावना को खारिज किया जा सकता है कि इस के बाद जाति आधारित नए राजनीतिक प्रयोग मूलभूत विषयों को प्रतिस्थापित नहीं कर देंगे? क्या शिक्षा, स्वास्थ्य और सुरक्षा जैसे विषय जाति आधारित नई राजनीतिक गठजोड़ की उर्वरता का मुकाबला कर पाएंगे?

इसके अतिरिक्त यह भी कि अगर नए आंकड़े यह दर्शाते हैं कि ओबीसी के अंतर्गत आने वाली किसी बड़ी और शक्तिशाली जाति की स्थिति 'सामान्य' जैसी ही है, तो क्या व्यावहारिक रूप से यह संभव हो सकेगा कि उसे आरक्षण व ऐसी अन्य सुविधाओं से अलग किया जा सके? या फिर तात्कालिक रूप से ओबीसी के भीतर ही विभिन्न जातियों के अंदर पनपने वाली आशंका और महत्वाकांक्षा का प्रत्युत्तर किस प्रकार दिया जाएगा? जाति जनगणना के क्रियान्वयन से पहले इस के हासिल के बारे में भी विचार कर लेना चाहिए। ऐसा न हो कि एक सामाजिक समस्या के बेहतर प्रबंधन का असंतुलित तरीका दूसरे गंभीर समस्याओं का कारण बन जाए।

वर्ष 2010 में तत्कालीन कानून मंत्री वीरप्पा मोइली ने तब प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को जाति और समुदाय आधारित डेटा को वर्ष 2010 की जनगणना में शामिल करने के लिए एक पत्र लिखा था। 1 मार्च, 2011 को तब लोकसभा में एक छोटी बहस में गृहमंत्री पी. चिदंबरम ने कहा था, 'केंद्र और राज्यों के पास ओबीसी की अपनी सूचियां हैं। कुछ राज्यों के पास ओबीसी की सूची है और कुछ के पास नहीं है और उन के पास अति पिछड़ा वर्ग की सूची भी है।' तब रजिस्ट्रार जनरल ने भी यह कहा था कि इस सूची में कुछ नई और कुछ खत्म हो गई श्रेणियां भी हैं, मसलन अनाथ और निराश्रित बच्चों की। कुछ जातियां एससी और ओबीसी, दोनों सूचियों में पाईं गईं। अनूसूचित जाति के ईसाई या मुस्लिम धर्म में जा चुके लोगों को भी अलग-अलग राज्यों में अलग तरीके से ट्रीट किया जाता है। इसे लेकर और भी सवाल तब पूछे गए थे। तब प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने कहा था, 'मैं आप को भरोसा दिलाता हूं कि कैबिनेट इस मामले में जल्दी ही कोई फैसला करेगी।' इसके बाद तत्कालीन वित्तमंत्री प्रणब मुखर्जी की अगुआई में मंत्रियों की एक समिति भी बनाई गई, लेकिन उसकी कुछ मीटिंग्स के बाद यूपीए सरकार ने पूरी तरह से सोशियो इकोनामिक कास्ट सेंसस कराने का फैसला लिया।

सामाजिक-आर्थिक जातिगत जनगणना के डेटा का क्या हुआ?

तब 4893.60 करोड़ रुपए की लागत से ग्रामीण विकास मंत्रालय के तहत ग्रामीण इलाकों में और शहरी गरीबी उन्मूलन और हाउसिंग मंत्रालय के तहत शहरी इलाकों में सामाजिक-आर्थिक डेटा को दोनों मंत्रालयों ने मिल कर 2016 में प्रकाशित किया। कच्चे जाति डेटा को सामाजिक न्याय और अधिकार मंत्रालय को सौंप दिया गया, जिसने पूर्व नीति आयोग के चेयरपर्सन अरविंद पनगड़िया की अगुआई वाली विशेषज्ञों की एक समिति भी गठित की थी, ताकि इस डेटा को क्लासिफाइड और कैटेगराइज किया जा सके। यह अभी मालूम नहीं है कि इस समिति ने अपनी रिपोर्ट सौंप दी है या नहीं, लेकिन अभी ऐसी कोई रिपोर्ट सार्वजनिक नहीं हुई है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) ने जाति जनगणना पर कोई हाल-फिलहाल में बयान नहीं दिया है, लेकिन वह इस विचार का पहले विरोध कर चुका है। 24 मई, 2010 में आरएसएस के सर कार्यवाह सुरेश भैयाजी जोशी ने नागपुर में एक बयान में कहा था, 'हम कैटेगरीज को पंजीकृत करने के खिलाफ नहीं हैं, लेकिन जातियों को दर्ज करने के विरोध में हैं।' उन्होंने कहा था कि जाति आधारित जनगणना उस विचार या योजना के खिलाफ जाती है जिसमें जातिविहीन समाज की कल्पना की गई है और ऐसा खुद बाबासाहेब आंबेडकर ने संविधान में लिखा है। अगर ऐसा कुछ किया गया तो वह सामाजिक सद्भाव के लिए अच्छा नहीं होगा।

लोकसभा में सरकार के हालिया बयान से पहले 10 मार्च को राज्यसभा में भी गृह राज्यमंत्री नित्यानंद राय यह कह चुके हैं कि आजादी के बाद एक नीति के तौर पर सरकार ने तय किया था कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति को छोड़ कर जनगणना को जाति आधारित नहीं रखा जाएगा, लेकिन 31 अगस्त, 2018 में एक मीटिंग की अध्यक्षता करते हुए गृहमंत्री राजनाथ सिंह ने कहा था कि हम समीक्षा कर रहे हैं। तब प्रेस सूचना ब्यूरो ने एक बयान में यग कहा था कि, 'यह उल्लिखित है कि पहली बार ओबीसी डेटा भी एकत्रित किया जाएगा।' लेकिन जब एक आरटीआई दायर कर पूछा गया कि इस मीटिंग के मिनट्स बताएं, तो रजिस्ट्रार जनरल के आफिस से कहा गया कि इस मीटिंग में ओबीसी डेटा का उल्लेख नहीं हुआ और न ही इस मीटिंग के कोई मिनट्स जारी किए गए।

23 सितंबर को सुप्रीम कोर्ट में दायर एक हलफनामे में केंद्र सरकार ने सामाजिक-आर्थिक जाति जनगणना आयोजित करने से इंकार कर दिया था। सरकार की तरफ से कहा गया था कि जाति जनगणना (अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए पारंपरिक रूप से की गई) को छोड़ कर असंभव है।

इसे 'प्रशासनिक रूप से कठिन और बोझिल' बताया गया था। हलफनामा महाराष्ट्र सरकार द्वारा एक रिट याचिका के जवाब में था, जिस में केंद्र सरकार को 2021 की जनगणना के दौरान ग्रामीण भारत के पिछड़े वर्ग के नागरिकों पर डेटा एकत्र करने के निर्देश देने की मांग की गई थी। याचिका में यह भी कहा गया है कि केंद्र एसईसीयूसी-2011 के दौरान एकत्र किए गए अन्य पिछड़े वर्गों (ओबीसी) पर जाति के आंकड़ों का खुलासा करे। सरकार का तर्क है कि न्यायपालिका सरकार को जाति जनगणना करने का निर्देश नहीं दे सकती, क्योंकि यह एक 'नीतिगत निर्णय' है और न्यायपालिका सरकार की नीति में हस्तक्षेप नहीं कर सकती। साथ ही यह भी कहा गया है कि जाति जनगणना का प्रयास करना व्यावहारिक नहीं है और प्रशासनिक रूप से भी ऐसा करना बेहद मुश्किल है।

भाजपा आज भले ही जाति आधारित जनगणना के पक्ष में न हो, लेकिन एक वक्त था जब भाजपा की तरफ से इसकी मांग की गई थी। साल 2010 में भाजपा के दिवंगत नेता गोपीनाथ मुंडे ने लोकसभा में जाति आधारित जनगणना के पक्ष में तर्क देते हुए कहा था कि अगर ओबीसी जातियों की गिनती नहीं हुई तो उनको न्याय देने में और 10 साल लग जाएंगे। यह बयान तब दिया गया था जब कांग्रेस सत्ता पर काबिज थी।

अब भाजपा सत्ता में है और इस मुद्दे पर उसका स्टैंड बदल गया है। जातीय जनगणना के सवाल पर सरकार संसद में साफ कर चुकी है कि जनगणना के दौरान सिर्फ एससी, एसटी को ही गिना जाएगा, जाति आधारित गणना नहीं होगी। मगर अब भाजपा क्यों नहीं चाहती जाति आधारित जनगणना हो ? सत्ता में आते ही इस मुद्दे पर पार्टियों का स्टैंड बदल जाता है। 2011 में सहयोगियों के दबाव में कांग्रेस जातिगत जनगणना करवाती है, पर उसके आंकड़े जारी नहीं करती। 2016 में भाजपा केंद्र में थी, लेकिन 2011 की जनगणना के आंकड़े जारी किए जाते हैं लेकिन जाति के नहीं और आज भी केंद्र की मोदी सरकार अपनों की मांग के बावजूद जाति आधारित जनगणना के पक्ष में नहीं है।

वैसे यह वही भाजपा है जो ओबीसी आरक्षण पर मुहर लगाने से लेकर केंद्रीय मंत्रिमंडल में ओबीसी चेहरों को जगह देने तक खुल कर अपना पक्ष रखती है। यूपी समेत कई राज्यों में जातियों को ध्यान में रखते हुए उपमुख्यमंत्री और मंत्री बनाती है। इसमें भाजपा की अपनी सियासी मजबूरियां हैं :

– भाजपा लगातार दो बार केंद्र में अपने दम पर जीत का परचम लहरा चुकी है और कई राज्यों में भी जीत दर्ज की है। भाजपा के सामने क्षेत्रीय दलों का बहुत नुकसान हुआ है, जातिगत जनगणना होने पर जाति आधारित राजनीति करने वाले क्षेत्रीय दलों को संजीवनी मिल जाएगी।

– ऐसी जनगणना में ओबीसी की आबादी घटने पर इस वर्ग के नेता एकजुट हो कर सियासी भूचाल ला सकते हैं। जबकि आंकड़ा बढ़ने पर अधिक आरक्षण की मांग उठ सकती है। जिसे मुद्दा बना कर क्षेत्रीय दल केंद्र सरकार पर दबाव डाल सकते हैं।

– भाजपा की राजनीति हिंदुत्व के मुद्दे पर टिकी है। अगर जातिगत जनगणना हुई, तो हिंदू समाज जाति के नाम पर विभाजित होगा, जिस का फायदा जातिगत राजनीति करने वाले दलों को होगा, भाजपा को नहीं। जबकि बीते चुनावों में ओबीसी का वोट भी भाजपा को मिला है।

– भाजपा के राष्ट्रवाद और हिंदुत्व जैसे मुद्दों पर जातिवाद भारी पड़ जाएगा।

– इस तरह की जनगणना से जाति आधारित राजनीति को बल मिलेगा। लोग खुद को जाति से जोड़ कर देखेंगे तो जाति के आधार पर सियासी दल और अन्य संगठनों का जन्म हो सकता है।

– जाति आधारित जनगणना पर भाजपा समाज के बंटने और सामाजिक सद्भाव, भाईचारा बिगड़ने की दलील भी दे सकती है।

– 'जिस की जितनी संख्या भारी, उस की उतनी हिस्सेदारी', इस तरह के नारे सियासी गलियारों में गूंजते हैं, ऐसे में जातिगत आधारित जनगणना में जिन की संख्या कम या बहुत कम होगी उनका क्या होगा ?

–जातियों का ओबीसी स्टेटस राज्यों और केंद्र के हिसाब से बदलता है, मसलन बिहार में बनिया ओबीसी हैं लेकिन उत्तर प्रदेश में वे अपर कास्ट में भी आते हैं और केंद्र की सूची में वो नहीं है।

ऐसे में सवाल उठता है कि सत्ता में आते ही पार्टियां इस तरह की जनगणना के खिलाफ क्यों हो जाती है ? मान लीजिए जातिगत जनगणना होती है, तो अब तक की जानकारी में जो आंकड़े हैं, वो ऊपर-नीचे होने की पूरी संभावना है। मान लीजिए, ओबीसी की आबादी 52 प्रतिशत से घट कर 40 फीसदी रह जाती है, तो हो सकता है कि राजनीतिक पार्टियां के ओबीसी नेता एकजुट हो कर कहें कि ये आंकड़े सही नहीं हैं और मान लीजिए इन का प्रतिशत बढ़कर 60 प्रतिशत हो गया, तो कहा जा सकता है कि और आरक्षण चाहिए। सरकारें शायद इस बात से डरती हैं। चूंकि आदिवासियों और दलितों के आकलन में फेरबदल होगा नहीं, क्योंकि वे हर जनगणना में गिने जाते ही हैं, ऐसे में जातिगत जनगणना में प्रतिशत में बढ़ने-घटने की गुंजाइश अपर कास्ट और ओबीसी के लिए ही है। जिस तरह से हाल के दिनों में मोदी सरकार ओबीसी पर मुखर हुई है, केंद्र सरकार आने वाले दिनों में जातिगत जनगणना पर पहल कर भी सकती है। जनगणना अपने आप में बहुत ही जटिल कार्य है। जनगणना में कोई भी चीज जब दर्ज हो जाती है तो उस से एक राजनीति भी जन्म लेती है, विकास के नए आयाम भी उस से निर्धारित होते हैं। इस वजह से कोई भी सरकार उस पर बहुत सोच समझ कर ही काम करती है। एक तरह से देखें तो जनगणना से ही जातिगत राजनीति की शुरुआत होती है। अभी जो राजनीति होती है, उस का ठोस आधार नहीं है, उसे चुनौती दी जा सकती है, इसलिए 50 फीसदी में से अनुसूचित जाति और जनजाति के आरक्षण को निकाल कर बाकी ओबीसी के खाते में दिया जाता है। लेकिन इसके अलावा आरक्षण का कोई आधार नहीं है। एक बार जनगणना में वो दर्ज हो जाएगा, तो सब कुछ ठोस रूप ले लेगा। कहा जाता है, 'जिस की जितनी संख्या भारी, उस की उतनी हिस्सेदारी'। अगर संख्या एक बार पता चल जाए और उस हिसाब से हिस्सेदारी दी जाने लगे, तो कम संख्या वालों का क्या होगा ? उन के बारे में कौन सोचेगा ? इस तरह के कई सवाल भी खड़े होंगे। ओबीसी और दलितों में ही बहुत सारी छोटी जातियां हैं, उनका कौन ध्यान रखेगा ? बड़ी संख्या वाली जातियां आ कर मांगेंगी कि 27 प्रतिशत के अंदर हमें 5 फीसदी आरक्षण दे दो, तो बाकियों का क्या होगा ? यह जातिगत जनगणना का एक नकारात्मक पहलू है। लेकिन एक सकारात्मक पहलू यह भी है कि इस से लोगों के लिए नीतियां और योजनाएं तैयार करने में मदद मिलती है। एक दूसरा डर भी है। ओबीसी की लिस्ट केंद्र की अलग है और कुछ राज्यों में अलग लिस्ट है। कुछ जातियां ऐसी हैं जिन की राज्यों में गिनती ओबीसी में होती है, लेकिन केंद्र की लिस्ट में उनकी गिनती ओबीसी में नहीं होती। बिहार में बनिया ओबीसी हैं लेकिन उत्तर प्रदेश में वो अपर कास्ट में आते हैं। वैसे ही जाटों का हाल है। हरियाणा, राजस्थान और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के जाटों पर भी ओबीसी लिस्ट अलग है। ऐसे में जातिगत जनगणना हुई तो आगे और बवाल बढ़ सकता है। केंद्र की सरकारों को एक डर इसका भी है।

जाति, आरक्षण और सियासत भारत में ये तीनों चीजें मानों एक दूसरे के लिए ही बनी हैं। जाति के आधार पर नौकरी से लेकर स्कूल, कॉलेज तक में आरक्षण का प्रावधान है। जाति के आधार पर ही सियासी दल खड़े होते हैं और सत्ता के शिखर तक पहुंच जाते हैं। जातिगत जनगणना को लेकर भले सियासी दल दो धड़ों में नजर आ रहे हों, लेकिन जाति का मुद्दा हर मोर्चे पर जैसे सार्वभौमिक सत्य की तरह मौजूद रहता है। स्कूल, कॉलेज, नौकरी में आरक्षण से लेकर चुनावों में टिकट बंटवारे और राज्य सरकारों से लेकर केंद्र सरकार की कैबिनेट तक में जातियों के आधार पर ही कुर्सियां मिलती हैं। जनसंख्या में ओबीसी की हिस्सेदारी की ठोस जानकारी नहीं है। सुप्रीम कोर्ट के फैसले के मुताबिक कुल 50 फीसदी से अधिक आरक्षण नहीं दिया जा सकता, इसलिए 50 फीसदी में से अनुसूचित जाति और जनजाति के आरक्षण को निकाल कर बाकी ओबीसी के खाते में दिया जाता है, लेकिन इसके अलावा आरक्षण का कोई और आधार नहीं है। ■